International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 26-09-2020; Accepted: 11-10-2020; Published: 30-10-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 5; 2020; Page No. 165-169

उत्तराखण्ड का आंचलिक इतिहास एवं संस्कृति

डॉ. सुनीता कुमारी
लुटाबढ़, रामनगर, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश
उत्तराखण्ड एक पर्वतीय राज्य है। यहां का लगभग 88 प्रतिशत भूभाग पर्वतीय है जबकि तराई एवं भावर का क्षेत्र महज 12 प्रतिशत है। यूँ तो नवीन राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में आये इस अंचल को अधिक समय नहीं हुआ है, लेकिन यदि इस अंचल की संस्कृति की बात करें तो यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही विश्व आकर्षण का केन्द्र रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप अंचल की सांस्कृतिक विविधता एवं ऐतिहासिक गौरव गाथा का उल्लेख अनेक साहित्यों एवं ऐतिहासिक ग्रंथों में देखने को मिलता है। आंचलिक रचनात्मकता न केवल समस्याओं के वास्तविक स्वरूप को समझने में मददगार है बल्कि वह इनके सर्वोत्तम संभावित समाधानों की दिशा का अचूक संकेत भी देती है। यही कारण है कि आज ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक और समाजशास्त्रीय विचार–परंपरा के साथ–साथ साहित्य के क्षेत्र में भी आंचलिक दृष्टिकोण की आवश्यकता असंदिग्ध है। इतना ही नही इस अंचल का पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में किया गया कार्य क्षेत्रीय ही नहीं वरन राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में प्रभावी पहल करने के लिए जाना जाता है। इस प्रकार के कार्य अंचल को एक पृथक सांस्कृतिक पहचान दिलाने का कार्य करती है। लेकिन आज जबकि संचार के क्षेत्र में बढ़ते तकनीकी प्रयोग ने सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन ला दिया है, का प्रभाव अंचल की संस्कृति पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बढ़ते पर्यटन व्यवसाय तथा भौतिकवादी चकाचौंध ने अंचल की सांस्कृतिक विरासत की नींव कमजोर किया है, जो आज समाज में उत्पन्न विविध समस्याओं का कारण साबित हो रही है। यही कारण है कि वर्तमान समय में अंचल के ऐतिहासिक स्वरूप का अध्ययन करना तथा इसकी सांस्कृतिक विरासत पर दृष्टि डालना समय की मांग बन गयी है। विषय के इन्हीं महत्व के कारण प्रस्तुत शोध पत्र हेतु प्रस्तुत विषय का चयन किया गया है। यह अध्ययन मूल रूप से अंचल के विविध मुद्दों एवं विषयों के अंतर्गत रचित विभिन्न साहित्यों पर केन्द्रित है।

मूल शब्द: संस्कृति, आंचलिकता, सामाजिकता, सृजनात्मक, विरासत, धर्मप्राणता, परंपरावादिता, ज्ञान–संधित्सा, मनस्विता, जुझारूपन, स्वायत्त, परिवेश, परंपरागत

प्रस्तावना
भारत के विभिन्न अंचलों के बारे में यह बताने की जरूरत नहीं कि ये मानवीय विकास के संघर्ष की महान परम्परा के महत्वपूर्ण और अविच्छेद्य अंग रहे हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में हमारे सामने विविध देश–काल–परंपराओं से गहन अविच्छिन्नता से आकर पाते जीवन संग्राम के विविध रूप हैं। इस अपार जन–समुदाय के विभिन्न सांस्कृतिक घटकों की सोच और सभावनाएँ अलग–अलग हैं। परंपरा से इनके संबंध के सातत्य का अपना–अपना विशिष्ट स्वरूप है। इन विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों की सृजनात्मक ऊर्जा का संधान तब तक संभव नहीं है जब तक इनकी प्रवृतिगत विशिष्टताओं की पहचान न की जाय। यह पहचान आंचलिक इतिहास–दृष्टि के बिना संभव नहीं है। कहना न होगा कि विचारधारात्मक रूप से आंचलिकता कोई रोग नहीं बल्कि स्वस्थ और सार्थक दृष्टिकोण है। यह न केवल अंचल बल्कि देश और दुनिया के विकास का मजबूत साधन है।

आंचलिक इतिहास के बारे में विचार करते हुए इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि आंचलिक इतिहास क्या है और इसकी आवश्यकता या उपादेयता क्या है। ऊपरी तौर पर अत्यन्त साधारण सा लगने वाला यह प्रश्न वास्तव में बेहद जटिल अवधारणात्मक चुनौतियों तक ले जाता है। देश के अंदर अधिकतर अंचलों की विभिन्न सांस्कृतिक अवस्थितियों और गतियों रही हैं। इन भिन्न सांस्कृतिक अवस्थितियों ने विभिन्न अंचलों के लोगों की विचार–पद्धति, जीवन–विधि, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं और जिजीविषाओं को भिन्न रूपाकार दिया है। भारत में ही नहीं अन्य अनेक राष्ट्र–राज्यों (नेशन स्टेट्स) में आधुनिक दौर में यह समस्या सामने आयी है। जो देश भौगोलिक रूप से जितने बड़े और सांस्कृतिक रूप से जितने ही विविध हैं, उनमें यह समस्या उतनी ही विकट है। देश के विकास के तमाम प्रयास सिद्धांत और व्यवहार के स्तर पर अंचलगत विभिन्नताओं की चुनौती से टकराते ही हैं। न केवल नीतिगत निर्णयों और आधारभूत संरचनागत विकास के दृष्टिकोण से बल्कि अंचल विशेष की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और समस्या की पहचान और परख के नजरिये से भी आंचलिक दृष्टिकोण की अनिवार्यता असंदिग्ध है।

आंचलिक रचनात्मकता न केवल समस्याओं के वास्तविक स्वरूप को समझने में मददगार है बल्कि वह इनके सर्वोत्तम संभावित समाधानों की दिशा का अचूक संकेत भी देती है। अतः ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक और समाजशास्त्रीय विचार–परंपरा के साथ–साथ साहित्य के क्षेत्र में भी आंचलिक दृष्टिकोण की आवश्यकता असंदिग्ध है। दिक्कत तब होती है जब हम आंचलिक विशिष्टता को श्रेष्ठता का एक मात्र आधार मानते हुए उसे व्यक्तिगत या क्षेत्रगत स्वार्थ साधन का अस्त्र बना बैठते हैं। समूची दुनिया और विशेषतः भारत के प्रसंग में आंचलिक दृष्टिकोण स्वाधीनता के बाद से अब तक निरंतर न केवल प्रासंगिक बना हुआ है बल्कि इसका महत्व बढ़ता गया है। आंचलिक अस्मितायें अपने अस्तित्व के लिये निरंतर संघर्षरत दिखाई देती हैं। इन संघर्षों की पारस्परिकता की दो स्वभाविक दिशायें हैं। पारस्परिक वर्चस्व की तुलनात्मक भावना यदि धनात्मक प्रतिस्पर्धा में परिणत हो सके तो यह देश के विकास का मजबूत आधार प्रस्तुत कर सकती है। यदि साधारण जन और नीति – निर्धारकों की स्वार्थपरता और तात्कालिक लाभधर्मी संकुचित मनोवृति ने इन संघर्षों को नकारात्मक प्रतिस्पर्धा में परिणत होने दिया तो यह देश और दुनिया के विकास को न केवल अवरूद्ध करेगी बल्कि नाश का आह्वान भी करेगी। ऐसी

परिस्थिति में यह बेहद जरूरी हो जाता है कि आंचलिकता में निहित धनात्मक संभावनाओं का सचेत परीक्षण कर इसे उचित प्रोत्साहन और विकास का स्वस्थ परिवेश दिया जाय। उत्तराखण्ड का आंचलिक इतिहास अनेक दृष्टियों से विलक्षण है। पुरातन काल से यहाँ के मानव–जीवन–संघर्ष के साक्ष्य उपलब्ध हैं। दुर्गम भौगोलिक परिवेश और अत्यल्प जनसंख्यात्मक धनत्व के बावजूद जीवन में अधिकांश आसंगों में यहाँ रहनेवालों ने न केवल अपनी उपस्थिति दर्ज की है बल्कि अपने अस्तित्व की सार्थकता के मूल्यवान प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। इस अंचल के स्त्री–पुरूषों की अदम्य जिजीविषा और संघर्ष समता को देश–देशान्तर में ख्याति मिलती रही है। उत्तराखण्ड के आंचलिक स्वरूप का निर्णायक आधार इसकी विशिष्ट भौगोलिक अवस्थिति है। उत्तर में तिब्बत, चीन, पूर्व में नेपाल, दक्षिण में उत्तर प्रदेश और पश्चिम में हिमाचल प्रदेश से घिरा यह मुख्यतः पर्वतीय प्रदेश दो बड़े सांस्कृतिक संकुलों–कुमाऊँ और गढवाल–का समेकित अभिधान है। उत्तराखण्ड में अवस्थित इन दोनों विशाल एवं प्राचीन सांस्कृतिक संकुलों की भाषा, वेश–भूषा और रीति–रिवाजों में स्पष्ट भिन्नताएँ हैं। लेकिन इनके बीच का यह अन्तर इतना प्रभाव नहीं है जितना इसे सामान्यतः देखा–दिखाया जाता है। मूलतः कृषि आधारित जीवन व्यवस्था वाले ये सांस्कृतिक अंचल अपनी मूल बनावट और मानसिकता में काफी हद तक समान है। उत्तराखण्ड में समग्र दुर्गम पर्वतीय संरचना के कारण आवागमन अपेक्षाकृत कठिन रहा है। स्वभावतः इस अंचल के भिन्न इलाकों के लोगों के पारस्परिक सांस्कृतिक समंजन की संभावनायें अत्यल्प रही हैं। पारम्परिक रूप से भिन्न–भिन्न राजनैतिक शासन व्यवस्थाओं के अधीन होने के चलते भी पारस्परिक भेद भाव बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत करने की प्रवृति दिखाई देती है। किन्तु इन दोनों सांस्कृतिक क्षेत्रों की मिलन रेखा और उसके आस–पास के क्षेत्रों में दोनों तरफ के लोगों में पारस्परिक विवाह संबंध और सांस्कृतिक समंजन भी खूब हुआ है। दोनों क्षेत्रों के लोग धर्मप्राणता, परंपरावादिता, ज्ञान–संधित्सा, मनस्विता, जुझारूपन और कलात्मक अभिरूचियों की दृष्टि से एक जैसे हैं। तराई और भावर का क्षेत्र जो आज निरन्तर बढ़ते आवागमन और करवाई सुविधाओं के साथ उत्तराखण्ड में अतिरिक्त महत्व अर्जित करता जा रहा है महज पचास वर्ष पूर्व तक धनधोर बियावान जंगलों के सिवा और कुछ भी न था। मध्य हिमालय और उच्च हिमालयी इलाकों में बसे हुये लोग भूलकर भी इन निचले इलाकों में बसने को तत्पर न थे। दोनों अंचलों के लोगों का जीवन अपने–अपने क्षेत्रों में सीमित और आर्थिक दृष्टि से स्वायत्त था। अतः इनके स्वभाव और जीने के ढंग पर उस परंपरागत शैली का गहरा प्रभाव है। लेकिन आज परिस्थितियां तेजी से बदल रही है। पर्वतीय क्षेत्रों और खासकर पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन की समस्या बढ़ी है। आज इन दोनों ही अंचलों में यह समस्या समान रूप से विचारनीय बन चुका है। गढ़वाल हो या कुमाऊँ आज कई पर्वतीय ग्राम ऐसे हैं जहां या तो सिर्फ वृद्ध बचे हैं, या फिर पूरा गांव खाली हो चुका है। कुछ दशक पूर्व तक जिन निचले इलाकों में यहां के निवासी रहना पसंद नहीं करते थे, आज उसी क्षेत्र में निवास कर रहे हैं, जिससे सांस्कृतिक संक्रमण बढ़ा है। जो संस्कृति कभी अंचल की पहचान हुआ करती थी आज अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत प्रतीत होती है। इन संस्कृति को फिर से जीवन देने के लिए अंचल में कई संस्थाएं कार्य कर रही है। बावजूद इसके आज यह गहन अध्ययन का विषय बन चुका है। अंचल के भावी पीढ़ी को उनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान से अवगत कराना तथा उनके महत्व को समझाना समयानुकूल प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में अंचल की विशिष्टता को केन्द्र में रखकर की गयी रचनाओं की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र का आलेखन किया गया है।

अध्ययन का महत्व एवं उद्देश्य

समकालीन समाज तीव्र गति से बदल रहा है। बदलाव की इस प्रक्रिया के कारण आज समस्त संस्कृतियां संक्रमण के दौर से गुजर रही है। ऐसे में आज इस बात की जरूरत महसूस की जा रही है कि पारंपरिक संस्कृति को संरक्षण दिया जाए। किसी भी संस्कृति को संरक्षण देने के लिए यह भी आवश्यक है कि वर्तमान यूवा पीढ़ी उससे अवगत हो। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक कारगर कदम साबित होगा। यह अध्ययन साहित्यों के अवलोकन के माध्यम से अंचल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालता है तथा साथ ही इस अंचल की सांस्कृतिक विरासत को भी उजागर करने का कार्य करता है।

प्रस्तुत अध्ययन समकालीन समय की आवश्यकताओं के आधार पर किया गया एक महत्वपूर्ण अध्ययन है। इस अध्ययन की समकालीन आवश्यकताओं एवं महत्व के आधार पर उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है जो इस प्रकार है–

1. क्षेत्र की आंचलिक इतिहास से अवगत होना
2. आंचलिक साहित्यों में वर्णित सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन करना

अध्ययन पद्धति

अध्ययन पद्धति किसी भी शोध कार्य की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके अभाव में किसी भी शोध कार्य की विभिन्न कड़ियों को व्यवस्थित रूप में संजोना टेढ़ी खीर प्रतीत होता है। इसलिए एक शोधकर्ता के लिए शोध विषय के चयन के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि अध्ययन पद्धति का निर्धारण कर लिया जाए। क्योंकि प्रस्तुत शोध कार्य मूल रूप से साहित्य के अवलोकन पर आधारित है इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र के आलेखन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। साथ ही विषय से संबंधित तथ्यों के संकलन के लिए मुख्य रूप से आंचलिक साहित्य, अंचल पर आधारित ऐतिहासिक रचनाओं तथा अवलोकन पद्धति की सहायता ली गयी है।

तथ्यों का विश्लेषण

संकलित साहित्यिक स्रोतों एवं अन्य माध्यमों से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड के प्राचीन इतिहास के बारे में व्यवस्थित जानकारी का अभाव है। इस काल के एतिहासिक परिदृश्य का विवरण अत्यल्प पुरातात्विक सामग्रियों एवं मुख्यतः साहित्यिक स्रोतों पर आधारित है। यह माना जाता है कि आर्यों से पहले यहाँ खश जाति का अधिकार था। राहुल सांकृत्यायन ने खशों से पहले यहाँ किरातों के वास का संकेत किया है। नारायण दत्त पालीवाल लिखते हैं कि – 'खस बेद बनने से पूर्व यहाँ आये उनका राज्य अनुमान से यहाँ 2–3 हजार वर्ष रहा। उनको जीतकर कत्यूरी राजाओं ने अयोध्या से आकर अपना राज्य यहाँ स्थापित किया। उनके शासन काल का कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है और कई ताम्र पत्र ईसा से कई शताब्दी पहले के हैं । श्री बद्रीदत्त पाण्डे जी ने यह भी लिखा है कि कत्यूरी शासन के मध्य में शक और हूणों ने भी कुछ समय के लिए राज्य किया। पर यह बहुत समय तक नहीं रहा। कत्यूरी साम्राज्य के पश्चात चन्द्र वंश का राज्य यहाँ लगभग एक हजार वर्ष तक रहा। बीच में दो ढाई सौ वर्ष कई खस राजा भी राज्य करते रहे। उसके पश्चात गोरखा शासन और बाद में सन 1815 में अंग्रेज शासक आए। उत्तराखण्ड के प्राचीन निवासियों में कोल, किरात, खस और शौका आदि प्रमुख हैं। आरंभिक दौर में इस इलाके पर शासन करने वाले राजवंशों में कुणिन्द राजवंश (400 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0), पौरव वंश (647 ई0 से 725 ई0 तक), कत्यूरी राजवंश (8वीं सदी से 10वीं सदी तक), चंदवंश (10वीं सदी से 18वीं सदी तक) और पंवार वंश (15वीं सदी से 18वीं सदी तक) आदि प्रमुख हैं। 18वीं सदी के अंत में गोरखों द्वारा

इस क्षेत्र को हस्तगत किये जाने के समय कुमाऊँ में चंदवंश और गढ़वाल में पंवार बंश का शासन था। ये दोनों राज्य पारस्परिक कलह ओर आंतरिक षड़यंत्रों के चलते शक्तिहीन और जर्जर हो चुके थे। इसी स्थिति का फायदा उठाकर गोरखों ने 1790 ई० में चंद राजा को पराजित किया और 1804 ई0 में पंवार राज्य को भी अधिकृत कर लिया। तब से लेकर 1814–16 ई० में अंग्रेजों के हमले तक यह क्षेत्र गोरखा शासकों के अत्याचारों को झेलता रहा। 1815 ई0 से भारत के आजाद होने तक यह अंचल अंग्रेजी शासन के अधीन रहा। इस दौर में अंग्रेजों द्वारा अधिगत यह क्षेत्र संयुक्त प्रांत का एक भाग था और टिहरी एक स्वतंत्र रियासत थी। आजादी के बाद यह उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग के रूप में जाना जाता रहा और टिहरी रियासत का उसमें विलय हुआ।

अंचल की भौगोलिक विशिष्टता

वर्तमान उत्तराखण्ड की सीमाओं के भीतर का विस्तार पश्चिम से पूर्व तक मुख्यतः चार विराट पट्टियों में प्रसरित है। पहली पट्टी के अंतर्गत उच्च हिमालय का क्षेत्र है जिसकी औसत उचाई समुद्र तल से 6000 मीटर है। इसमें नंदा देवी (7816 मीटर), कामेट (1756 मीटर) चौखम्भा (7138 मीटर), त्रिपूल (7120 मीटर), नंदा कोट (6661 मीटर), भागीरथी (6856 मीटर), बंदरपूछ (6315 मीटर, गंगोत्री (6072 मीटर) और पंचाचूली (8904 मीटर) आदि पर्वत–शिखर है। राज्य के इस माग में बर्फ से ढकी चोटियों और हिमनदों के कारण बेहद महत्वपूर्ण इस पट्टी से दक्षिण मध्य हिमालय का क्षेत्र है, जिसकी औसत उचाई समुद्र तल से 3000 मीटर है। इसके अंतर्गत उत्तराखण्ड के विश्व प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र मसूरी, नैनीताल, कौशानी, अल्मोड़ा और रानीखेत अवस्थित हैं। इसी क्षेत्र में प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ बद्रीनाथ, केदारनाथ और हेमकुण्ड साहिब आदि स्थित हैं। इससे दक्षिण उपहिमालय का क्षेत्र आता है। जिसकी औसत ऊँचाई समुद्र तल से 1500 मीटर है। इससे भी दक्षिण भावर और तराई का इलाका है। भावर क्षेत्र मुख्यतः पथरीला मैदान है और तराई का क्षेत्र बेहद उपजाऊ मैदानी क्षेत्र है। इसकी पूर्वी सीमा में काली नदी से पश्चिम में टॉस नदी तक और उत्तर में उच्च हिमालयी क्षेत्र में चीन की सीमा से दक्षिण में तराई के मैदानों तक इसका विस्तार कम से कम पाँच महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संकुलों का समुच्चय है। इनकी भाषा, वेश–भूषा और जीवन–व्यवहार जैसे बाहरी कारकों से लेकर जीवन–दर्शन और आस्था की बनावट जैसे आन्तरिक कारकों तक विभिन्नता के प्रमाण मिलते हैं। गरीबी, बेकारी, पलायन, रोजगार के अवसरों की कमी, परम्परागत जातीय विभेद की दृष्टि और स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी संकीर्णता अबतक इन सांस्कृतिक संकुलों में देखी जा सकती हैं ।

इसकी विशिष्ट भौगोलिक संरचना ने इस राज्य को जैव विविधता की दृष्टि से अद्वितीय बना दिया है। जीव–जंतुओं और पेड़–पौधों की जितनी प्रजातियाँ इस अकेले राज्य में उपलब्ध है, वह अपने आप में विस्मयजनक है। विशिष्ट भौगोलिक संरचना से जुड़ी अनिवार्य दुर्गमता और जीवनगत परिस्थितियों में व्याप्त अनंत कठिनाइयों के चलते इस अंचल में आबादी का धनत्व देश के अन्य इलाकों की तुलना में बहुत कम रहा है। कृषि के मुख्यतया वर्षा पर आश्रित होने, उपज के कम होने, औद्योगीकरण के अभाव आदि के कारण यहाँ का युवा वर्ग आज भी बड़ी संख्या में पहाड़ से पलायन को विवष है। ब्रिटिश प्रभुत्व के काल में इस क्षेत्र के लोगों को फौज में जगह दी गयी और सैन्य क्षेत्र में इस अंचल की स्वाभाविक अभिरुचि आज भी बरकरार है। इस अभिरुचि ने इस अंचल के जीवन को जो स्वरूप दिया है उसे मोहन थपलियाल के निम्नलिखित वाक्यों में देखा जा सकता है– ''पहाड़ के अधिकांश गाँव ऐसे होते हैं, जिनके सभी नौकरी पेशा सदस्य फौज में हैं। एक भाई सेना में दूसरा नेवी में, तीसरा किसी अर्द्धसैनिक बल में और चौथा और पांचवां भी फौज के ही किसी संगठन में मिलेगा। ऐसे संयोग भी बहुत कम आते हैं जबकि पाँचों भाई इक्टठे मिल सकें। परिवार में मौत पर भी पाँचों भाई इकट्ठा नहीं हो सकते हैं। अक्सर ऐसा भी होता है कि एक भाई आज सुबह विदा हो गया दूसरा भाई उसी दिन शाम को पहुँच रहा है।''

इस अंचल को भौगलिक, परिस्थितिक और सांस्कृतिक साम्य के आधार पर ही स्वतंत्र राज्य के लिये किये गये आन्दोलन में कुमाऊँ और गढ़वाल के लोगों ने पारंपरिक–पारस्परिक वैमनस्य और संकीर्णता को भूलकर एक साथ आने का विवेक विकसित किया। यह विवेक किसी संयोग का फल नही है बल्कि एक विशाल देश के भीतर अपने अंचल की विशिष्टता के आधारों, अपनी शक्ति और सीमा की तर्क–सम्मत आलोचना और विकास की समस्त आकांक्षित संभावनाओं को देखकर विकसित किया गया सुविचारित जीवन–पथ है। विभिन्न राजनीतिक दलों और उनकी सरकारों की ओर से न सही, यहाँ की आम जनता की ओर से तो उत्तराखण्ड राज्य की अवधारणा और इसका अपेक्षित स्वरूप अनिवार्यतः इसकी आंचलिक अस्मिता पर ही आधारित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शोषित तथा उपेक्षित अंचलों की चारित्रिक विशिष्टताओं, उनकी आकांक्षाओं, सपनों, शक्ति और सीमा, विकास की चेस्टाओं में आ रही बाधाओं आदि की जैसी पहचान आंचलिक दृष्टिकोण से मिलती है, वह बड़े काम की चीज है। इतिहास लेखन ही नहीं, बल्कि अन्यान्य सामाजिक विज्ञानों के अंतर्गत अध्ययन और शोध की दिशा में इस दृष्टि के प्रयोग की आवश्यकता है। वास्तविकता यह है कि आंचलिक इतिहास का लेखन हमारे समय और समाज की एक बड़ी जरूरत है। अब तक जो इतिहास लेखन हमारे सामने है उसमें विभिन्न क्षेत्रों को आधार बनाकर किए गए अध्ययन बहुत है, किन्तु अफसोस के साथ यह कहना पड़ता है कि इस क्षेत्रीय इतिहास लेखन के पीछे आंचलिक दृष्टि की सचेत सक्रियता नहीं के बराबर रही है। आंचलिक इतिहास दृष्टि से देखा गया उत्तराखण्ड इस बात का पता देता है कि यहाँ के लोगों की विभिन्नता और परिवेशगत विविधिता के बीच आन्तरिक एकता के सूत्र की बनावट कैसी है। स्वाधीनता आंदोलन के प्रयत्नों से लेकर स्वतंत्र राज्य गठन के आंदोलन तक और उसके बाद के इन बीस वर्षों में यहाँ के जनसाधारण की आकांक्षाओं और सपनों की संरचना क्या है? व्यवस्था और संस्थागत ढाँचे को यहाँ के लोग किस तरह देखते हैं और इसमें कैसी भागीदारी चाहते है। इनके पारस्परिक राग–द्वेश और स्पर्धा की मति–गति क्या है? अपनी जमीन पशुओं, जंगलों, जल सोतों, पहाड़ों और घाटियों, खेतों और पेड़–पौधों और देश–स्थानों से इनका रिश्ता, इनके रागविराग क्या है।

आंचलिक की सांस्कृतिक विशिष्टता

इस अंचल में विविध धर्म के लोग निवास करते आए हैं। इनके अतिरिक्त यहां वर्तमान समय में 5 जनजातियां निवारत हैं, जो मूल रूप से हिन्दू धर्म से जुड़े है। लेकिन कुछ जनजातीयां मुस्लिम, इसाई, बौद्ध आदि धर्म को भी अपना रहे हैं। आज जबकि सामाजिक परिवर्तन की दर अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है, ये समुदाय अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं संवर्द्धन में बहुत हद तक कामयाब दिखाई देती है। यही कारण है कि इनकी सांस्कृतिक विविाष्टता आज भी आकर्षण का केन्द्र है। ये और बात है कि समय चक्र का असर इनकी सांस्कृतिक विविधता पर भी पड़ा है। यह अंचल मूल रूप से दो मंडलों में विभक्त है– गढ़वाल और कुमाऊँ। इस अंचल की आर्थिक संरचना के बारे में उमेश डोभाल और राजेन्द्र जुगाल की टिप्पणी अधिकांशतः पूरे उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर यथावत लागू होती है– वन विनाश के कारण पशुपालन में कमी आई। फलस्वरूप खेतों को मिलने वाली परपरागत गोबर की खाद की मात्रा में भी कमी

आई। वन–विनाश के कारण जलवायु व जलस्रोत भी प्रभावित हुए। इन कारणों से कृषि उत्पादन में ठहराव व गिरावट आयी और कृषि भूमि विस्तार की संभावनाएँ धीरे धीरे समाप्त हो गयीं। वन विनाश से पशुपालन में भारी ह्रास हुआ जिसका कुप्रभाव हस्तशिल्पों के नष्ट होने के रूप में प्रकट हुआ। विदेशी शासकों ने चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों (जो चारे, खाद, इंधन व हस्तशिल्प के लिए कच्चे माल के स्रोत थे) के स्थान पर चीड़ व अन्य तुरंत व्यावसायिक लाभ वाले वृक्ष लगाये। स्थान–स्थान पर जंगलों को काट करके चाय बागान बनाये। अर्थव्यवस्था के स्थानीय हितों की अनदेखी करके शासकों के हितों के अनुरूप ढालने के परिणाम स्वरूप वह धीरे–धीरे जड़ होती गयी। इस जड़ता के बढ़ने के साथ–साथ बेरोजगारी व गरीबी भी बढ़ी। कृषकों की माली हालत के गड़बड़ाने से दस्तकार भी प्रभावित हुए और श्रम विभाजन की प्रासंगिकता भी अपना अर्थ खोने लगी। बेरोजगारी व गरीबी से मुक्त होने के लिए किसान व दस्तकार प्रवास पर जाने को बाध्य होने लगे। उल्लेखनीय है कि अर्थव्यवस्था के तहस नहस होने के कारण अंग्रेजों को सस्ते सैनिक तथा उनके प्रशासनिक केन्द्रों व आरामगाहों को सस्ते मजदूर व घरेलू नौकर उपलब्ध हुए। यह प्रक्रिया बाद में भू–भाग की विशिष्टता बन गयी। विकास कार्यक्रमों की भारी उपलब्धि के दावों के बावजूद स्थिति यह है कि यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त कोई अन्य व्यवसाय नहीं है। समस्त विकास कार्यक्रम भ्रष्ट नौकरशाहों की लूट के साधन बने हुए हैं और चंद स्थानीय व्यक्ति ही मालामाल हो रहे हैं। स्कूल, चिकित्सालय, मोटर मार्ग आदि सुविधाएँ भी उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित है जो मुखर हैं और प्रशासन तंत्र पर दबाव डालने की स्थिति में हैं। यदि यहाँ की अर्थव्यस्था को यहाँ की आवश्यकताओं के अनुरूप न ढाला गया तो पलायन की समस्या और उसके दुश्परिणाम बने रहेंगे। आंचलिकता, भौगोलिक एकरूपता, उदगम और विकास की पारिस्थितिकी एवं सांस्कृतिक परिवेश की समता से आकार–प्रकार ग्रहण करती जैव विविधता के बीच पायी जाने वाली आन्तरिक एवं बाहय एकता का बोध है। कहना न होगा कि इन विभिन्न दायरों में जन्म लेती और पनपती जिन्दगी विविध देश–काल की भिन्नता लिहाज से पास या दूर की जिन्दगी की ऐसी ही सिम्तों से अलग होकार भी परस्पर संबद्ध होती हैं। इन दायरों में आकार–प्रकार पाती जिन्दगी के जीने के तरीकों से किसी अंचल विशेष को लोगों की आत्मीयता ही आंचलिकता है। मानव–जीवन की अव्याहत विकास यात्रा में हो रहे इन सतत परिवर्तनों से वहां के लोगों की आत्मीयता की सुदीर्घ परम्पराएँ ही लोगों की आवश्यकताओं, सपनों, उनकी शक्तियों और सीमाओं के निर्धारण और नियंत्रण का काम करती है। किसी अंचल में पायी जाने वाली वनस्पतियों, जीव–जंतुओं की विविध प्रजातियां, नदियां, जमीन, पहाड़ जैसे अन्य परिस्थितिक तत्वों के साथ वहाँ जन्म लेने वाले लोगों की आत्मीयता प्रश्नातीत रही है।

पर्यावरण को लेकर इस अंचल को लोगों की चिन्ताओं की मुख्यतः दो धाराएँ हैं। इस प्रसंग को समझने के लिए इन दोनों विचार सरणियों से परिचित होना जरूरी है। पर्यावरण के लिए, उत्तराखण्ड की जनता की चिन्ता और जागरुकता रोजमर्रा की भौतिक परिस्थितियों से सीधे जुड़ी है। पर्यावरण को लेकर दो विरोधी पक्ष सामने आते हैं। एक ओर वे लोग हैं जिनके लिए पर्यावरण के प्रति जागरुक होने का सिर्फ यह अर्थ है कि पेड़ कतई न काटे जायें, सड़क न बने, कारखाने न लगे। कुल मिलाकर या कि प्रकृति से किसी भी प्रकार की क्षेरखानी गलत है। सारी गरबड़ियों का कारण विज्ञान और औद्योगीकरण है। यह विचारधारा विकास की किसी भी कोशिश को न केवल शंका की नजर से देखती है बल्कि उसे अवरुद्ध मी करती है। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो मानते हैं कि– ''औद्योगीकरण आज के मानव समाज की नियति है। बूढ़े पेड़ वैज्ञानिक समझ के साथ काटने ही पड़ेंगे, कारखाने लगाने ही पड़ेंगे, सड़कें बनेगी ही पर पूरी पर्यावरणीय वैज्ञानिक समझ के साथ। कितना प्रतिशत इलाका वनाक्षादित रहे, इसका अनुकूलतम संतुलन क्या हो, इसे वैज्ञानिक समझ के साथ निकाला जाना चाहिए। बड़े बाँध न बनाकर छोटे बांध, छोटी जल विद्युत परियोजनाएँ, सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग होना चाहिए।'' यह विचार अपने आप में संतुलित और ग्राहय है, लेकिन इस तरीके के इस्तेमाल में जिस ईमानदारी और निष्ठा की आवश्यकता है उसकी कमी इसकी आस में कई चोर दरवाजे खोल देती है। वनों और पर्यावरण के प्रति यहाँ के लोगों की सम्वेदनशीलता असंदिग्ध है। सरकारी तंत्र के निरन्तर बढ़ते हस्तक्षेप के कारण लोगों की यह सम्वेदनशीलता अब नकारात्मक उत्तेजना में बदलने लगी है। यह स्थिति निहायत चिन्ताजनक है। इतना निश्चित है कि वनों और पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षा इस अंचल के निवासियों की सक्रिय भागीदारी के बिना असंभव है।

निष्कर्ष

उत्तरांचल एक पर्वतीय राज्य है। इस भूमि को देवभूमि भी कहा जाता है। अंचल में व्याप्त किंवदंतियों, साहित्यिक अवलोकनों एवं विद्वतजनों से प्राप्त सूचनाओं से स्पष्ट है कि अंचल में विविध संस्कृतियां एक साथ फल–फूल रही है। यह अंचल की कोई नवीन विशेषता नही है, वरन इनके ऐतिहासिक साक्ष्य इनकी प्राचीनता एवं पारंपरिकता को स्पष्ट करती है। जनजातीय समुदाय जो प्राचीन काल से इस अंचल में निवासरत हैं, की सांस्कृतिक विशिष्टता कल भी आकर्षण का केन्द्र था और आज भी आकर्षण का केन्द्र है। संचार के बदलते साधन और आवागमन की बढ़ती सुविधा, रोजगार के अवसर एवं सरकार द्वारा इन समुदायों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की पहल ने आज इनकी कई सांस्कृतिक धरोहर को विलुप्तप्राय बना दिया है, बावजूद इसके यह आज भी आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत वह समुदाय जो वर्षों से पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत रहे हैं, भी अपनी पारंपरिक आर्थिक क्रियाकलाप से दूर हो रहे हैं। आंचलिक स्तर पर आज पलायन की समस्या इस समुदाय में इस कदर हाबी है कि कई गांव लगभग खाली हो चुका है। इस कारण आज इस बात की जरूरत महसूस हो रही है कि अंचल की पारंपरिक संस्कृति को एक बार पुनः जीवित किया जाए। जिसमें प्रकृति प्रेम और प्रकृति आश्रित जीवन पद्धति का विशिष्ट स्थान रहा है। आंचलिक धरोहर और ऐतिहासिक साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि विकास के नाम पर आज प्रकृति के साथ जो खिलवाड़ हो रहा है, रोजगार और भौतिकवादिता से प्रेरित पलायन की जो वर्तमान स्थिति है पर नियंत्रण समय की मांग बन गयी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. उपाध्याय, डॉ. मृत्युंजय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
2. डोगरा, डॉ. उषा, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श, अनुभव प्रकाशन, कानपुर
3. डोभाल, उमेश और जुयाल, राजेन्द्र, नैनीताल समाचार (पच्चीस साल का सफर), नैनीताल मुद्रण एवं प्र0 समिति, नैनीताल
4. थपलियाल, मोहन, नैनीताल समाचार (पच्चीस साल का सफर), नैनीताल मुद्रण एवं प्र0 समिति, नैनीताल
5. ध्यानी, डॉ. आर. पी., उत्तरांचल की खोज, विद्या प्रकाशन मन्दिर लिमिटेड, मेरठ
6. पाण्डेय, डॉ. इन्दु प्रकाश, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन–सत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
7. पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
8. पालीवाल, डॉ0 नारायणदत्त, कुमाउँनी के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, मौलिक साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
9. बिष्ट, प्रो. शेर सिंह, कुमाऊँ हिमालयः समाज एवं संस्कृति, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी
10. मटियानी, डॉ. शुभा, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का रचना–विधान, हिमाचल प्रकाशन, हल्द्वानी
11. .मिश्रा, राजेश और जोशी, मल्लिकार्जुन, नैनीताल समाचार (पच्चीस साल का सफर), नैनीताल मुद्रण एवं प्र0 समिति, नैनीताल
12. रावत, जयसिंह, उत्तराखण्डः जनजातियों का इतिहास, विन्सर पब्लिसिंग कम्पनी, देहरादून
13. शर्मा, प्रो. डी. डी., उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी